

## लोहिया की 'सामाजिक क्रान्ति' एवं दीनदयाल उपाध्याय का 'सामाजिक परिवर्तन' सम्बन्धी अवधारणा—

तरुण राय, शोध छात्र, इतिहास विभाग  
डॉ० शकुन्तला मिश्रा  
राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

डॉ० लोहिया जहाँ समाज में परिवर्तन के लिए क्रान्ति की बात करते हैं तो वहीं पं० दीनदयाल उपाध्याय समाज में बदलाव हेतु सामाजिक क्रान्ति के लिए हिंसा को नकारते हैं। वे सामाजिक बदलाव हेतु अहिंसात्मक तरीके से कार्य करने को प्रेरित करते हैं। उनका मानना है कि हथियारों के बल पर निरंतर क्रान्ति नहीं की जा सकती है। डॉ० लोहिया का कहना है कि "क्रान्ति के लिए विचार-दर्शन की जरूरत होती है।" उनके अनुसार यही विचार दर्शन, स्कूल और इस तरह की दूसरी संस्थाओं के लिए उद्देश्य बनाती है। लेकिन डॉ० लोहिया के अनुसार "यह विचार-दर्शन उस समय निरर्थक हो जाता है, जब हासिल करने के दौरान में व्यक्ति ऐसे तरीके इस्तेमाल करें, जो चरित्र निर्माण के खिलाफ दिखाई पड़ते हैं।" डॉ० लोहिया का विचार है कि "क्रान्तिकारी बहुधा अपनी शुरुआत के उद्देश्य भूल जाते हैं। उनके अनुसार अपनी कौम या मनुष्य जाति में सच, कर्म और उदारता के गुण उभारने के लिए 'क्रान्ति' की आवश्यकता की उनकी दिमागी तैयारी शायद हो जाती है और परिवर्तन करने की वे आवश्यकता भी महसूस करते हैं लेकिन डॉ० लोहिया के अनुसार राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक क्रान्ति करने के उतावलापन में वे अपने रास्ते से भटक जाते हैं।" डॉ० लोहिया अन्याय का विरोध करने के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। डॉ० लोहिया कहते हैं कि "अन्याय का विरोध करने वाले मन में, भविष्य में न्याय और भला करने की बात सोचते हैं उनके अनुसार ये लोग चेतन या अचेतन अवस्था में यदि आराम नहीं तो रुतबा प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं और उनकी रुतबे के लिए भूख प्रायः भला करने की तबियत के बराबर होती है।"

### क्रान्ति एवं हिंसा

डॉ० लोहिया ने सामाजिक क्रान्ति करने के लिए किस प्रकार के कार्यों की जरूरत है, उसे भी स्पष्ट किया है। डॉ० लोहिया 'सिविल नाफरमानी' के जरिए ही किसी भी प्रकार की 'क्रान्ति' करने की सलाह देते हैं। डॉ० लोहिया का कहना है कि 'क्रान्ति' या सिविल नाफरमानी अहिंसक तरीके से होनी चाहिए। डॉ० लोहिया की मान्यता थी कि "षण्यन्त्र और हथियार से निरन्तर क्रान्ति की बात असंगत है।"

डॉ० लोहिया कहते हैं कि "(क्रान्तिकारी) आदमी को, हिंसा, अन्याय और अत्याचारपूर्ण रुतबे से लड़ने के लिए हमें तैयार रहना होगा। उनका कहना है कि क्रान्ति करने वाले को अन्याय का विरोध करने की आदत बना लेनी चाहिए। इसके लिए उसे इतिहास में मुँह मोड़ना होगा।" वे सामाजिक क्रान्ति के लिए समाज के दलितों, पिछड़ों एवं वंचित वर्ग को आगे आने के लिए प्रेरित करते हैं। उनका कहना है कि "समाजवादी लोग जब तक कड़े दिल से यह फैसला नहीं करते हैं कि हमें नीचे की जनता की, किसान, मजदूर, विद्यार्थी की राजनीति चलाना है, मजदूर आन्दोलन, खेत-मजदूर किसान आन्दोलन, महिला आन्दोलन, जाति तोड़ों आन्दोलन, दाम बांधो आन्दोलन इत्यादि चलाने हैं, तब कुछ नहीं होगा।" इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि "दुनिया के करीब-करीब हर हिस्से में यह लड़ाई लड़ी जा रही है। वे गैर-बराबरी और नाइन्साफी के खिलाफ लड़ते-जूझते ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जिससे आन्तरिक शक्ति और बाहरी या भरा पूरा समाज हो।"

इस प्रकार डॉ० लोहिया अन्याय और असमानता के विरुद्ध क्रान्ति करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि गरीबी-अमीरी का फर्क दूर हो, ऊँची-नीची और छोटी जाति का, रंग भेद का, नर-नारी असमानता का अन्त हो।

### सामाजिक क्रान्ति एवं सामाजिक परिवर्तन

डॉ० लोहिया सामाजिक क्रान्ति की दिशा में वर्णव्यवस्था पर भी चोट करते हैं। वे इस पर चौतरफा हमले का सुझाव देते हैं। उनका कहना है कि "समाज के पिछड़ हुए लोगों को केवल

धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक ही नहीं अपितु राजकीय स्तर पर भी उन्हें आगे लाया जाना चाहिए और यह तभी संभव है जब उन्हें वि"ष अवसर मिलें।<sup>9</sup> इस आधार पर कहीं न कहीं वे इन पिछड़े वर्गों के लिए वि"ष व्यवस्था की बात करते हैं।

डॉ० लोहिया भारतीय समाज में शोषण के तीन प्रमुख औजार को मानते हैं सम्पत्ति, जाति और भाषा। उनका कहना है कि "हिन्दुस्तान में जिनके पास सम्पत्ति है, उनमें अधिकां"ा के पास 'जाति'की भी दौलत रहती है और ये इन दोनों (सम्पत्ति और जाति) के बल पर भाषा की भी सम्पत्ति हासिल कर लेते हैं।"<sup>10</sup> उनका मानना था कि इन तीनों औजारों के द्वारा ही उच्च जातियों एवं वर्गों ने समाज के वंचित वर्गों का शोषण किया है। समाज के बहुसंख्यक वर्गों को इससे वंचित रखा गया है। डॉ० लोहिया का कहना है कि "इन तीनों सम्पत्तिया से जो वंचित है, वस्तुतः वही इस दे"ा का 'सर्वहारा' है।"<sup>11</sup>

डॉ० लोहिया कहते हैं कि इस सर्वहारा वर्ग को संगठित होकर एक मोर्चा बनाना चाहिए और उनके अनुसार यह मोर्चा ही वर्ग की विषमता पर आधारित समाज के ढाँचे को तोड़ सकेगा और फलस्वरूप सामाजिक क्रान्ति घटित होगी।

डॉ० लोहिया के अनुसार आत्मा का रूपान्तरण आवश्यक है वह रूपान्तरण अध्यात्मिक समानता से वंचित रखने से नहीं हो सकता। अध्यात्मिक समानता से वंचित रखने के कारण ही आज भारतीय समाज में सामाजिक एवं आर्थिक असमानता उत्पन्न हुई है। ऐसी असमानता की स्थिति प्राप्त मानव द्वारा परिवर्तन एवं क्रांति के लिए मुखर होना स्वाभाविक है। वही पं० उपाध्याय सामाजिक जीवन के सहज विकास के पक्षपाती रहे हैं। वे परिवर्तन के लिए परिवर्तन एवं क्रांति की भाषा बोलने वालों से सहमत नहीं थे वे सामाजिक सनातनता के समर्थक रहे हैं एवं परम्परा को अपरिवर्तनीय नहीं वरन् प्रवाह के रूप में परिभाषित करते हैं— इनके अनुसार— "परम्परा का अर्थ अपरिवर्तन नहीं। हमारी परम्परा सनातन है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तन विपरीत भी होता है। शव में परिवर्तन होता है वह सड़ता है। जीवित शरीर का परिवर्तन विकास की ओर जाता है। परिवर्तन जीवित समाज का द्योतक है। जहां परिवर्तन नहीं, वहां सनातन नहीं, किन्तु परिवर्तन जड़ से परम्परा के प्रवाह से सम्बन्धित होना चाहिए।"<sup>12</sup> पं० दीनदयाल उपाध्याय सामाजिक परिवर्तन को ही समाज की विकास प्रक्रिया स्थापित करने का प्रयास करते हैं। इस विकास प्रक्रिया को ही वे संस्कृति कहते हैं, यही विकास है। जिस परम्परा में परिवर्तन की योग्य क्षमता होती है उसे ही संस्कृति का सम्मानित पद दिया जाता है। डॉ० उपाध्याय सामाजिक यथास्थिति के विरोधी होते हुए भी परिवर्तन की उग्रता को अनावश्यक मानते हैं। इस विचार के कारण उपाध्याय के विचार को समाजदर्शन का यथास्थिति ही माना गया है। वहीं डॉ० लोहिया अध्यात्मिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में अपना विचार रखते हुए कहते हैं कि "आत्मा अपने अंदर अच्छे और बुरे दोनों कर्म करने के लिए मानव को अग्रसित करता है। ऐसी आत्मा जिससे बुरे कर्म उपजते हैं। वह कभी न तो देश के कल्याण के लिए योजना बना सकती है न ही खुशी से जोखिम उठा सकती है। जैसे वर्ण व्यवस्था वर्तमान समय में भी लाखों करोड़ों लोगों को दबे और पिछड़े बनाए रखी है। लोहिया का कहना है कि जाति व वर्ग का रूपान्तरण का चक्र चलता रहता है, परन्तु भारतीय सामाजिकता इसे ऐसी स्थिति प्रदान करती है जिससे यह स्थायी रूप से जड़ता में व्याप्त हो गई है।"<sup>13</sup>

डॉ० दीनदयाल उपाध्याय अपने परिवर्तनकांक्षा के विचार के तहत समाज में उत्पन्न ठहराव की स्थिति को वाल्टेयरी के गतिशीलता के नियम से समाधान करने के पक्षधर रहे हैं। इनकी दृष्टि में "समाजव्यापी ठहराव का मुख्य कारण भारतीय सामाजिक जीवन की परम्परा के आंतरिक भाव में क्षीणता का आ जाना है। भारतीय समाज केवल उपरी कर्मकाण्ड को संस्कृति समझ बैठा है। वे उदाहरण देते हैं कि कर्मकाण्ड के रूप में 'कुम्भ का विराट मेला' लगता है लेकिन उसमें 'अखिल भारतीय दृष्टि' होने का आंतरिक भाव जो था वह समाप्त हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारी अच्छी बातें ही हमारी दुर्बलता बन गई हैं।"<sup>14</sup> डॉ० लोहिया के अनुसार रूपान्तरण की व्यवस्था सामाजिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ता की स्थिति में लाती है। आज सामाजिक सम्बन्धों में जाति प्रथा सामाजिक स्थिति का निर्णायक तत्व बन कर सामने आई है। जाति प्रथा के कारण सामाजिक सम्बन्धों पर व्यापक रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यहां विचारणीय तथ्य यह है कि जाति—प्रथा समाज में आंतरिक रूप से अपनी जड़ें जमा चुकी हैं जिसकी समाप्ति के अतिरिक्त अन्य कोई परिवर्तन सक्षम रूप से कार्यरत व्यवस्था नहीं हो सकता है। सामाजिक जीवन के प्रत्येक तथ्य जाति के घेरे में

हो चलते हैं। कार्य का आधार जन्मजात मान लिया गया और कुछ कार्यों को उच्च और अन्य को निम्न स्थिति स्वीकार किया। फलतः एक रूपान्तरित पदसोपानीय स्थिति का जन्म हुआ। कुछ हुनर अन्य हुनरों से अविश्वसनीय ढंग से ऊंचे मान लिये गये हैं और उस स्थिति में निचले हुनर की जातियों को नीच माना गया है। बहुसंख्यक जनता बेजान है, विशिष्ट वर्ग कपटी है। जाति प्रथा ने ऐसी स्थिति प्रदान कर दी है कि उच्च जातियाँ अपनी विशिष्ट भाषा, वेशभूषा और रहन-सहन के द्वारा जिनके लिए छोटी जातियाँ अक्षम हैं जनता के बहुसंख्यक भाग में हीन भावना भर दी है।

पं० दीनदयाल उपाध्याय जाति प्रथा की समाप्ति तो नहीं अपितु हिन्दू समाज में व्याप्त अंतरंग सामाजिक, दुर्बलताओं के निराकरण द्वारा उच्च एवं निम्न जातियों के सम्बन्धों में सुधार का विचार रखते हैं। ये आगे कहते हैं कि “जातिभेद के कारण उत्पन्न समाज में उत्पन्न ऊंच-नीच और अन्य विभिन्नताओं को तत्काल दूर किया जाना चाहिए और पिछड़े हुए वर्गों एवं अन्य हिन्दुओं के बीच पूर्ण साथ की स्थापना की जाये। साथ ही समाज हेतु धार्मिक पर्वों और उत्सवों को सामूहिक, संगठित तथा अनुशासित रूप से मनाया जाए।”<sup>15</sup>

पं० दीनदयाल उपाध्याय अपने परिवर्तनकारी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि— “यद्यपि हमें अपने उज्ज्वल भविष्य का अनुमान है और हम उसमें जो कुछ है उससे स्फूर्ति भी लेते हैं; परन्तु दूसरी ओर हम यह भी मानते हैं कि आज हम उस अति प्राचीन युग में नहीं जी सकते। हमें तो अब उससे भी अधिक उज्ज्वल भविष्य निर्माण करने के लिए प्रयासरत है। इसलिए हमें बहुत सी पुरानी रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों को छोड़ना होगा।”<sup>16</sup> सामाजिक यथास्थिति के परिवर्तन के आंतरिक व्यवस्था में सुधार का विचार रखने के कारण सामाजिक चेतना से सम्बन्धित व्यक्तियों ने संघ व उपाध्याय के समाजदर्शन को यथास्थितिवादी माना। वास्तव में विकास प्रक्रिया का संयोजन एवं समाज का संस्कारित करने का कार्य मंदगति एवं बहुत परिश्रम से साध्य होता है। ऐसा कोई तात्कालिक उपाय नहीं है जिससे कि सामाजिक सुधार में चमत्कार हो जाये। जो व्यक्ति सामाजिक सुधार की भूमिका में रहते हैं उनमें बहुधा परिवर्तन की व्याग्रता रहती है। वे समाज की विकृतियों पर सीधी चोट करते हैं। पं० दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार “क्रांतिवादी” तो समाज के समूल उलट देने की मानसिकता वाले होते हैं।<sup>17</sup> अतः सामाजिक क्रान्ति नहीं वरन सामाजिक परिवर्तन से ही समाज का वास्तविक एवं सर्वांगीण विकास होगा।

## सन्दर्भ सूची

1. लोहिया, सच, कर्म प्रतिकार और चरित्र निर्माण, पृ. 12.
2. वही, पृ. 13.
3. वही, पृ. 12.
4. वही, पृ. 12.
5. वही, पृ. 15.
6. वही, पृ. 15.
7. लोहिया क्रान्तिकरण पृ. 40.
8. रमेश चन्द्र सिंह, राजनीति और साहित्य पृ. 36.
9. वही, पृ. 36.
10. वही, पृ. 37.
11. वही, पृ. 38.
12. डॉ० शर्मा महेन्द्र, पं० दीनदयाल उपाध्याय, कर्तव्य एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017 पृ. 275.
13. थापर रोमिला (सम्पादित) 'साम्प्रदायिकता और इतिहास लेखन' नई दिल्ली, 1970, पृष्ठ-20
14. संघ-शिक्षा-वर्ग; बौद्धिक वर्ग पंजिका, दिल्ली, दिनांक 12.06.1959 पृ. 47.
15. पाचजन्य; अधिवेशन परिशिष्टांक, 11 जनवरी, 1953, पृ. 16
16. दीनदयाल उपाध्याय, 'राजनैतिक सौदेबाजी में हमारा विश्वास नहीं' (25 जुलाई 1953 को लखनऊ की सार्वजनिक सभा में दिए गए भाषण से); पाचजन्य, 27 जुलाई 1953, दे, पृ. 8
17. डॉ० शर्मा महेन्द्र, पं० दीनदयाल उपाध्याय, कर्तव्य एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017 पृ. 277.